International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 230-233

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 230-233
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-12-2022
Accepted: 19-01-2023

शैलेश कुमार कुशवाहा

पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
शैलेश कुमार कुशवाहा

पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

राजेन्द्रकर्णपूर में औचित्य विमर्श

शैलेश कुमार कुशवाहा

सारांश

अनादिकाल से लोक में उसी व्यवहार को सद्-व्यवहार माना जाता है जो औचित्य पर अवलम्बित रहता है। लोक-व्यवहार में यदि औचित्य का आधार न हो तो यह लोक लुप्त हो सकता है। अतः लोकव्यवहार में महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि किस व्यक्ति के साथ किस तरह का आचरण उपयुक्त होगा।

सौन्दर्य-भावना का आधार इस दृश्य जगत् में औचित्यतत्त्व ही है। औचित्य का अभाव होने से कोई वस्तु असुन्दर मानी जाती है। सांसारिक पदार्थों के अपने-अपने विशिष्ट और निर्दिष्ट स्थान होते हैं जो भङ्ग होने पर पदार्थ अपने महत्त्व खो देते हैं। मानवों के दन्त, नख आदि स्थानभङ्ग हो जाने पर शोभाहीन हो जाती है।[1] शरीर को अलङ्कृत करने के लिए कटक-कुण्डल आदि अलङ्कार तभी तक अलङ्कार कहे जा सकते हैं जब तक वे उचित स्थान पर विन्यास रहेगें। अनुचित स्थान में धारण किया गया अलङ्कार स्वयं को ही असुन्दर नहीं अपितु धारण करने वाले व्यक्ति को भी मूर्ख सिद्ध कर देता है।

सभी काव्यों का मुख्य लक्ष्य दर्शक तथा श्रोताओं के हृदयों में रस का उन्मीलन करना ही रहा है और इस लक्ष्य की सिद्धि में औचित्य का अति आवश्यकता है। अनुचित वेश-भूषा, अनुचित कथोपकथन, अनुचित मञ्च-रचना जिस तरह दृश्य-काव्यों के अभिनय देखने वालों के हृदय में रस का उन्मीलन नहीं कर पाता उसी तरह अनुचित पद-प्रयोग आदि श्रव्य-काव्य के श्रोताओं को आनन्दित नहीं कर पाता। । काव्यशास्त्र के सभी आचार्यों ने अपने-अपने तरीके से रस, अलङ्कार आदि के उचित प्रयोग का विवेचन करते हुए 'औचित्य' का संकेत दिया है तथा शुद्ध रूप से औचित्य को काव्य का तत्त्व मानकर आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' नामक ग्रन्थ का प्रतिपादन किया है। इस शोध प्रपत्र में औचित्य की दृष्टि से राजेन्द्रकर्णपूर का विवेचन किया जाएगा।

कूटशब्द : राजेन्द्रकर्णपूर, औचित्य, शम्भु, हर्षदेव

प्रस्तावना

काव्य में औचित्य की अनिवार्यता का प्रतिपादन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी आचार्यों ने किया है। आचार्य भरत के अनुसार नाटक के अभिनय में लोक-स्वभाव एवं लोक-व्यवहार को ही प्रमाण मानना चाहिए।[2] उनका कथन है कि नाटक की पात्रों की वेशभूषा उनके देश और आयु के अनुरूप ही दिखलाना चाहिए। देश के प्रतिकूल वेशभूषा कभी भी शोभादायक नहीं हो सकता, जैसे कि गले में मेखला और हाथ में नूपुर का धारण।[3] इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भरतमुनि 'औचित्य' पद के उद्भावक न होकर 'औचित्य तत्त्व' के उद्भावक हैं।

आचार्य भामह ने भी औचित्य शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से नहीं किया। उन्होंने 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ में कई दोषों के विषय में विशिष्ट सन्निवेश के कारण दोषत्व से मुक्त होने की बात कही है। सन्निवेश-विशेष के कारण दुष्ट उक्ति भी उसी प्रकार शोभाजनक हो जाती है, जिस प्रकार मालाओं के मध्य में गूँथा गया नील पलाश शोभाजनक होता है।[4] असाधु वस्तु भी आश्रय के सौन्दर्य से

---

[1] स्थानभ्रष्टा न शोभते, दन्ताः केशा नखा नराः । औ. वि. च., आचार्य ब्रजमोहन झा, पृ. १०

[2] लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम् ।
तस्मान्नाट्यप्रयोगेषु प्रमाणं लोक इष्यते ।। वही पृ. १३

[3] अदेशजो हि वेशस्तु न शोभां जनयिष्यति ।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ।। वही पृ. १५

[4] सन्निवेशषविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते ।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव ।। का. ल. १/५४

अत्यन्त सुन्दर हो जाती है जिस प्रकार स्वभावतः काला कज्जल भी कामिनी के नयन में लगाए जाने पर शोभावर्धक हो जाता है।[5] आगे उनका एक और कथन स्पष्ट है कि 'पुनरुक्ति' दोष अवश्य है परन्तु भय, शोक, असूया, हर्ष आदि भावों से चित्त के आक्षिप्त होने पर पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता।[6] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि औचित्य होने के कारण ही भय आदि के अवसर पर 'पुनरुक्ति' का दोषत्व समाप्त हो जाता है। अतः इससे प्रतीत होता है कि भामह ने भी औचित्य-तत्त्व की ओर संकेत किया है।

आचार्य दण्डी के अनुसार देश, काल, कला, लोक, न्याय तथा आगम से यदि विरोध हो तो वह काव्य-दोष माना गया है। परन्तु कवि कौशल के कारण उस तरह का विरोध भी कहीं-कहीं गुण हो जाता है।[7] उनके कथन से यह सारांश ज्ञात होता है कि अनुचित स्थान पर सन्निवेश के कारण ही दोष की दोषता है और उचित स्थान पर निवेश के कारण दोषों का दोषत्व-परिहार हो जाता है।

आचार्य रूद्रट ने रस के साथ अलङ्कारों का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए इसका विवेचन अतिसूक्ष्म पद्धति से किया है। काव्य में वे अलङ्कार ही ग्राह्य हैं जो प्रकृत रस का पोषण करते हों। इस तथ्य का विवेचन आचार्य रूद्रट ने अपने ग्रन्थ में किया है जिससे औचित्य विषयक उनकी धारणा उच्चतर प्रतीत होती है। उनके अनुसार काव्य में औचित्य के आधार पर ही अनुप्रास का प्रयोग होना चाहिए।[8]

आचार्य रूद्रट के बाद औचित्य-सिद्धान्त के विकास में आचार्य आनन्दवर्धन का प्रमुख स्थान रहा है। उन्होंने ध्वन्यालोक में अलङ्कारौचित्य, गुणौचित्य, संघटनौचित्य, प्रबन्धौचित्य और रसौचित्य का विशद विवेचन किया है। आनन्दवर्धन ने रस के विनियोजन के लिए 'औचित्य' का विधान किया है। उन्होंने कहा है कि अनौचित्य ही रस के विनाश का सबसे बड़ा हेतु है और औचित्य का समावेश ही रस का उत्कृष्ट उपाय है।[9] कवियों को उपदेश करते हुए उन्होंने कहा है कि वाच्य तथा वाचक की रसानुकूल औचित्यपूर्ण योजना ही महाकवियों का मुख्य कर्म है।[10] आचार्य अभिनवगुप्त का कथन है कि अलङ्कार्य रस को उचित रूप से सुशोभित करने वाले अलङ्कारों का ही काव्य में औचित्य होता है। शव को कुण्डलादि आभूषण सुशोभित नहीं कर सकते तथा सन्यासी के शरीर पर स्वर्णाभूषण हास्यास्पद प्रतीत होते हैं।[11] इस प्रकार अभिनवगुप्त ने स्पष्ट निर्देश किया है कि रस-ध्वनि के साथ औचित्य का नित्य सम्बन्ध है।[12]

आचार्य भोजराज ने काव्यतत्त्व के रूप में 'औचित्य' का उल्लेख नहीं किया है तथापि गौणरूप से औचित्य-सिद्धान्त उनके ग्रन्थों मे विद्यमान है। उनके ग्रन्थों में दोष, गुण तथा अलङ्कार के विवेचन में अनेक भेद हैं जिनका मूल आधार 'औचित्य' ही है। काव्य अथवा नाटक में वक्ता के अनुरूप पदों का व्यवहार नहीं करने से 'अपद' दोष होता है।[13] विभिन्न भाषाओं का चमत्कार अवसरविशेष पर ही सहृदयों के हृदय में आनन्द का उन्मेष करता है। यज्ञों के अवसर पर संस्कृत भाषा का ही प्रयोग उचित है, स्त्रियों के मुख से प्राकृत भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए, कुलीन जनों के लिए संकीर्ण भाषा का प्रयोग अनुचित है और मूर्ख जनों को समझाने के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग हास्यास्पद है।[14]

आचार्य कुन्तक के अनुसार मार्ग तीन प्रकार के होते हैं- सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम। इसमे समान रूप से रहने वाले दो सामान्य गुणों का उल्लेख कुन्तक ने किया है-

- औचित्य
- सौभाग्य

औचित्यगुण की विवेचन करते हुए उन्होंने कहा है कि- वस्तु के स्वभाव का स्पष्ट वर्णन, यथानुरूप कथन ही 'औचित्य' नामक गुण कहलाता है। इससे स्वभाव के महत्त्व का पोषण होता है।[15] इस विवेचन से प्रतीत होता है कि कुन्तक औचित्य को सबसे व्यापक काव्यतत्त्व मानते हैं।

आचार्य धनञ्जय का कथन है कि नाटक में नायक या रस के प्रति जो विरुद्ध हो या अनुचित हो उसे परित्याग कर देना चाहिए या अन्य प्रकार से कल्पना करनी चाहिए।[16] रस के अनुचित प्रयोग को आचार्य मम्मट ने रसाभास, भावाभास आदि माना है।[17]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य सिद्धान्त की स्थापना 'औचित्यविचारचर्चा' में किया। औचित्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है- जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है, वह उचित कहलाता है और उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलाता है।[18] उन्होंने औचित्य को काव्यगत चारुत्व एवं रस का मूल माना है। उनका मानना है कि इसके अभाव में अलङ्कार तथा गुण दोनों की सत्ता नहीं रहती।[19] काव्य का प्राण तत्त्व होने के कारण यह काव्य के सभी अङ्गों मे विद्यमान रहता है।[20]

भेद निरूपण

औचित्य का क्षेत्र यद्यपि बहुत विस्तृत है, इसकी गणना कर निश्चित संख्या बताना आसान नहीं है तथापि आचार्य क्षेमेन्द्र ने २७ स्थानों का निर्देश किया है-[21] पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलङ्कार, रस, क्रिया, कारक, लिङ्ग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम तथा आशीर्वाद।

पदौचित्य

---

[5] किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसाध्वपि ।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ।। वही १/५५

[6] भयशोकाभ्यसूयासु हर्षविस्मययोरपि ।
यथाह गच्छ गच्छेति पुनरुक्तं न तद् विदुः ।। वही ४/१४

[7] विरोधः सकलोऽप्येषः कदाचित् कविकौशलात् ।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ।। का. द. ४/५७

[8] एताः प्रयत्नादधिगम्य सम्यगौचित्यमालोच्य तथार्थसंस्थम् ।
मिश्राः कवीन्द्रैरघनाल्पदीर्घाः कार्या मुहुश्चैव गृहीतमुक्ताः ।। रु. का. ल. २/३२

[9] अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परः ।। ध्वन्या. ३/१४ की वृत्ति

[10] वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम् ।
रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्यं महाकवेः ।। वही ३/३२

[11] तथाहि- अचेतनं शवशरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति,
अलङ्कार्यस्याभावात् । यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति,
अलङ्कार्यस्यानौचित्यात् । वही २/५ लोचन टीका

[12] उचितशब्देन रसविषयमेवौचित्यं भवतीति दर्शयन्
रसध्वनेजीर्वितत्तवं सूचयति । तदभावे हि किमपेक्षयेदमौचित्यं नाम
सर्वत्रोद्घोष्यत इतिभावः ।। वही १/२ लोचन टीका, पृ. ७३

[13] विभिन्नप्रकृतिस्थादि पदयुक्त्यपदं विदुः । स. क. १/२४

[14] न म्लेच्छितव्यं यज्ञादौ स्त्रीषु नाप्राकृतं वदेत् ।
संकीर्ण नाभिजातेषु नाप्रबुद्धेषु संस्कृतम् ।। स. क. २/८

[15] आञ्जसेन स्वभावस्य महत्त्वं येन पोष्यते ।
प्रकारेण तदौचित्यमुचिताख्यानजीवितम् ।। व. जी. १/५३

[16] यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा ।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।। द. रू. ३/२४

[17] तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः ।
तदाभासा रसाभासा भावाभासाश्च ।। का. प्र. ४/४९

[18] उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।। औ. वि. च. ७

[19] अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणाः सदा ।
औचित्यं रस-सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।। औ. वि. च. ५

[20] काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् । वही १०

[21] औ. वि. च. ८,९ & १०

आचार्य क्षेमेन्द्र पदौचित्य का वर्णन करते हुए कहते हैं- जिस प्रकार कोई चन्द्रमुखी गौरवर्ण कामिनी कस्तूरीकृत श्याम तिलक से अथवा श्यामा नायिका श्रीखण्डचन्दनकृत एक गौर तिलक से सुशोभित होती है ठीक उसी तरह तिलकतुल्य एक उचित पद से कविसूक्ति भी सुशोभित हो जाती है।[22]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में पदौचित्य दृष्टिगोचर होता है-

कूर्मे धैर्यं शिथिलय धृतिं मुञ्च शेषस्य शेषा.
माशामाशाकरिषु वसुधे देवि मा मा दधीथाः ।
शक्तः सप्ताम्बुनिधिपरिखामेखलामप्ययं त्वां
वोढुं मौर्वीकिणपरिचितो भ्रूपतेरस्य बाहुः ॥[23]

अर्थात् हे पृथ्वी देवी तुम (अपने धारणार्थ) कच्छपावतार पर धीरज मत बांधोए शेषनाग पर सन्तोष करना छोड़ दो, दिग्गजों पर भी अपनी बची आशा मत रखो क्योंकि सात समुद्रों की खाइयों रूपी करधनियों से युक्त भी तुम्हें धारण करने में धनुष की डोरी के घाव से अङ्कित इस राजा की यह भुजा समर्थ है।

प्रस्तुत पद्य में 'वसुधे देवी' यह पद पृथ्वी देवी के लिए प्रयोग किया गया है जिसमे पृथ्वी देवी को निश्चिन्त रहने को कहा जा रहा है, इस पद से पद्य सुशोभित हो जाती है, अतः यहाँ पदौचित्य दृष्टिगोचर होता है।

वाक्यौचित्य

जिस प्रकार त्याग से उदार, ऐश्वर्य तथा सत्स्वभाव से विद्या सहृदयों के लिए हमेशा अभीष्टम होती है उसी प्रकार औचित्य-घटित कविवाक्य भी काव्यतत्त्वज्ञों के लिए अभीष्टम होता है।[24]

रूपं यन्मदने द्युतिः शशिनि या गंभीरता याम्बुधौ
यो मेरौ गरिमास्ति या कमलिनीकान्ते प्रतापोन्नतिः ।
यो लक्ष्मीरमणेऽपि विक्रमगुणस्तत्सर्वमेकत्र चे.
द्द्रष्टुं वाञ्छसि दृश्यतामयमये देवस्त्रिलोकीमणिः ॥[25]

अर्थात् कामदेव में जो सौन्दर्य है, चन्द्रमा में जो चमक है, सागर में जो गाम्भीर्य है, मेरु पर्वत में जो गौरव है, सूर्य में जो प्रताप का उत्कर्ष है, विष्णु में जो पराक्रम का वैशिष्ट्य है, उसको यदि तुम एक जगह देखना चाहते हो तो तीनों लोकों की मणि इस राजा को देख लो।

प्रस्तुत पद्य में राजा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त विभिन्न समुचित पदों से पूरे वाक्य में औचित्य का आधान हो रहा है। इसलिए यह वाक्यगत औचित्य का उदाहरण सिद्ध होता है।

गुणौचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र गुणौचित्य का वर्णन करते हुए कहते हैं- जिस प्रकार सम्भोग-काल में उदित चन्द्र आनन्दवर्षी हो जाता है, उसी प्रकार प्रस्तुत अर्थ के लिए उचित ओज आदि गुण काव्य में सौन्दर्याधायक होता है।[26]

चक्रे यत्र मदोर्जितार्जुनभुजस्तम्भाहतिं भार्गवो
यत्रासीद्दशकण्ठकण्ठविपिनच्छेदी रघूणां पतिः ।[27]

प्रस्तुत पद्य में टवर्ग, रेफ इत्यादि का प्रयोग हुआ है तथा राजा हर्ष के प्रकृष्ट प्रताप के अनुरूप ओज नामक उचित काव्यगुण से और अधिक उत्कर्ष को प्राप्त करते हुए उनके पराक्रम को अधिक बढ़ा रहा है।

अलङ्कारौचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र अलङ्कारौचित्य का निरूपण करते हुए कहते हैं- अर्थानुरूप अलङ्कार से कवि की उक्ति उसी तरह सुशोभित होती है जिस प्रकार उन्नत पयोधरों पर लटकते हार से कोई मृगनयनी।[28]

तात्पर्यं कमलासने विरचितं गौरीहितैः पालिता
त्रैलोक्याद्भुतकृत्सदानवजये दोर्विक्रमो दर्शितः ।
एकेनैव कृतं तु देव भवता तत्रापि ते न स्मयो
यद्वेधाश्च पुरान्तकश्च कमलाकान्तश्च देवोऽकरोत् ॥[29]

अर्थात् ब्रह्मा ने कमलासन में अपनी अभिलाषा रखी है और तुमने लक्ष्मी के दान में अपनी रुचि बनाई है। शिव जी ने प्रेम से पार्वती का पालन किया है और तुमने अपने उद्योगो से पृथ्वी का पालन किया है। तीनों लोकों में आश्चर्य जनक काम करने वाले उस विष्णु भगवान् ने दानवों की जय में भुजाओं का पराक्रम दिखाया है और तुमने सदा तीनों लोकों में आश्चर्यकारी नयी-नयी विजयों में अपना भुजबल दिखाया है। हे महाराज! आपने अकेले ही वह सब कर दिया है जो ब्रह्म, शिव तथा लक्ष्मीपति महाराज विष्णु ने किया था। फिर भी आप को अभिमान नही है।

प्रस्तुत पद्य में महाराज हर्ष ने अकेले ही तीनों देवताओं के कार्यों को किया है इस कारण उनका सामर्थ्य तीनों से बढ़-चढ़ कर होने से व्यतिरेक अलङ्कार है। अभिमान होने का कारण उपस्थित होने पर भी अभिमान रूप कार्य के नहीं होने से विभावना अलङ्कार भी है जो राजा के प्रसङ्ग में औचित्यपूर्ण है।

रसौचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र रसौचित्य का लक्षण करते हुए कहते हैं- औचित्य के कारण रमणीय रस सहृदयों के हृदय को प्रभावित करता हुआ उसे उसी प्रकार प्रफुल्लित कर देता है जिस प्रकार वसन्त ऋतु अशोक वृक्ष को।[30]

चैत्रं मा स्मर विस्मर स्मर रतिं किं सायकैर्मारकै-
र्गोधां मुग्ध मुधा बधान जहिहि ज्याबन्धधीरं धनुः ।
देवेऽस्मिन्हि सकृत् स्मृतेऽपि न मतिर्नैव स्मृतिर्न स्थिति-
र्नासक्तिर्न धृतिर्न निर्वृतिरपि क्वाप्यस्ति वामभ्रुवाम्।।[31]

अर्थात् हे कामदेव! तुम (वसन्त ऋतु के) चैत्र मास का स्मरण मत करो, अपनी पत्नी रति को भूल जाओ और (प्रेमियो के) संहारक तुम्हारे बाणों का भी अब कोई उपयोग नहीं रहा है। अरे मूर्ख! अब तुम (अपने बाये हाथ में) चमड़े की पट्टी को व्यर्थ बांधे हो, डोरी के बन्धन से स्थिर धनुष को छोड़ दो अर्थात् तुम्हें सुन्दरियों को जीतने के लिए किसी भी साधन की आवश्यकता नही; क्योंकि इस राजा हर्षदेव का एक बार स्मरण भर कर लेने पर किसी भी स्थान पर सुन्दर भौहों वाली रमणियों के पास न बुद्धि रहती है, न ही स्मरण शक्ति रहती है, न जमकर एकत्रावस्थान रहता है, न सांसारिक पदार्थों के प्रति रुचि रहती है, न धैर्य रहता है और न शान्ति रहती है।

---

22 तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम् ।
चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम् ।। वही ११

23 राजेन्द्र. ६६

24 औचित्यरचितं वाक्यं सततं संमतं सताम् ।
त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्ज्वलमिव श्रुतम् ।। औ. वि. च. १२

25 राजेन्द्र. ५९

26 प्रस्तुतार्थोचितः काव्ये भव्यः सौभाग्यवान्गुणः ।
स्यन्दतीन्दुरिवानन्दं सम्भोगावसरोचितः ।। औ. वि. च. १४

27 राजेन्द्र. ६१

28 अर्थौचित्यवता सूक्तिरलङ्कारेण शोभते ।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ।। औ. वि. च. १५

29 राजेन्द्र. ५३

30 कुर्वन्सर्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः ।
मधुमास इवाशोकं करोत्यङ्कुरितं मनः ।। औ. वि. च. १६

31 राजेन्द्र. ११

प्रस्तुत पद्य में हर्षदेव आलम्बन विभाव है, हर्षदेव का सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है, रमणियों के पास बुद्धि, धैर्य, स्मरण, शक्ति आदि का अभाव हो जाना अनुभाव है उत्कण्ठा आदि व्यभिचारी भाव है। इन विभावादि द्वारा पुष्ट रति नामक स्थायी भाव सामाजिक को पूर्वराग विप्रलम्भ रस की चर्वणा कराता है। अतः यहाँ शृङ्गार रस औचित्य है।

विशेषणौचित्य

जिस प्रकार उत्कृष्टगुणसम्पन्न मित्रों द्वारा गुणवान् सज्जन सुशोभित होता है उसी प्रकार समुचित विशेषणों से ही विशेष्यभूत काव्यार्थ सुशोभित होता है।[32]

संदिष्टं वसुधासुधाकर शचीकान्तेन मुञ्चोद्यमं
देव त्वं प्रबलप्रतापदनोद्रेकाय बद्धाञ्जलि ।
एते मानुभवन्तु नाकतरुणी कर्णावतंसोचिता:
क्लान्तिं नन्दनकन्दलीषु कलितव्यापल्लवाः पल्लवाः ॥[33]

अर्थात् इन्द्र ने हाथ जोड़ कर यह सन्देश भेजा है- हे पृथ्वी के चन्द्र महाराज हर्षए आप प्रचण्ड प्रतापाग्नि को दहकाने के लिए अपना उद्योग छोड़ दो ताकि स्वर्ग की सुन्दरियों के कर्णाभूषण बनने योग्य नन्दनवन की कमलों की पंखुड़ियां कुछ संकटग्रस्त होकर मुरझा न जाये।

प्रस्तुत पद्य में महाराज हर्ष के लिए 'वसुधासुधाकर' विशेषण से काव्यार्थ में उत्कृष्ट रमणीयता आ गई है। अतः यहाँ विशेषण औचित्य है।

निपातौचित्य

जिस प्रकार उचित स्थान पर नियुक्त उपादेय सचिवों द्वारा धन की उन्नति सुदृढ़ होती है उसी प्रकार उचित स्थान में प्रयुक्त 'च' आदि निपातों से काव्यार्थ की सङ्गति।[34]

तद्युक्तं ननु कुम्भसंभव भवत्प्रज्ञारहस्येन यद्
द्यां च क्ष्मां च तिरोदधन्निरवधिर्विन्ध्योऽपि वन्ध्यरू कृतः ।
देवस्यास्य शरन्निशाकरकरन्यक्कारपारंगमं
मात्येतत्कथमन्यथा परिणतं द्यावापृथिव्योर्यशः ॥[35]

अर्थात् हे अगस्त्य मुनि! यह ठीक ही हुआ जो तुम्हारी तीव्र बुद्धि के रहस्य से द्युलोक और पृथ्वीलोक को छिपाने वाला निस्सीम विन्ध्य पर्वत भी निष्फल कर दिया गया। नहीं तो शरच्चन्द्र की किरणों को तिरस्कृत करके विजय प्राप्त करता हुआ महाराज हर्ष का प्रौढ़ यश द्युलोक और पृथ्वी लोक में कैसे समाता?

प्रस्तुत पद्य में अगस्त्य मुनि के द्वारा विन्ध्य पर्वत को निष्फल कर देना जिससे महाराज हर्ष का प्रौढ़ यश द्यावापृथिवी में स्वभाविक रूप से समा रहा है। इस दशा को परिपुष्ट करने वाला 'ननु' निपात काव्यार्थ में औचित्यधायक है।

अभिप्रायौचित्य

शब्दप्रयोग में क्लेश न होने के कारण अभिप्राय को प्रकट करने वाला ही काव्य, सज्जनों के निश्छल तथा सरलता से सम्पन्न चित्त के समान सहृदयों के हृदय का आवर्जक हो पाता है।[36]

हेरम्ब त्यज कर्णतालनिनदं चूडापगे गर्ज मा
मा मा कांचनकिंङ्किणीकलकलं कण्ठे ककुद्यन्कृथाः ।
प्रक्रांतासु सुरैः पुरः पुररिपोर्युष्मद्यशोगीतिषु
व्यग्रस्येति परिस्फुरन्ति वचनान्यानन्दिनो नन्दिनः ॥[37]

अर्थात् हे गणेश! आप अपने कानों की फड़फड़ाहट को छोड़ो, शिव की जटाओं में रहने वाली गङ्गे! आप अब गरजो नहीं, हे वृषभ! तुम गले में सोने की घण्टियों की मधुर और अव्यक्त आवाज़ को मत करो। इस प्रकार राजा हर्षदेव के यशोगान के आरम्भ हो जाने पर नन्दी नाम के शिव के अनुचर (के मुख) से निकल रहे हैं।

प्रस्तुत पद्य से यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि हर्षदेव के यशोगान की ध्वनि अत्यन्त कर्णमधुर है जिसको सुनते समय श्रोतागण थोड़ी सी भी आहट को सहन नहीं कर सकते। अतः यहाँ अभिप्रायौचित्य है।

अतः औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से अध्ययन करने पर पदौचित्य, वाक्यौचित्य,गुणौचित्य,अलङ्कारौचित्य,रसौचित्य,विशेषणौचित्य ,निपातौचित्य तथा अभिप्रायौचित्य का वर्णन प्राप्त हुआ है।

सन्दर्भ

1. काव्यमाला, (प्रथम गुच्छक) दुर्गा प्रसाद, मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, १९२९
2. राजेन्द्रकर्णपूर, (.व्या.हि) (डॉ.) वेदकुमारी, वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९७३
3. क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा सं).हि(.व्या. श्रीनारायण मिश्रए वाराणसी: चौखम्भा ओरियन्टालिया, १९८२
4. क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा (व्या.) श्रीब्रजमोहन झा, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, तृतीय संस्करण, १९८२

---

[32] विशेषणैः समुचितैर्विशेष्योऽर्थः प्रकाशते ।
गुणाधिकैर्गुणोदारः सुहृद्भिरिव सज्जनः ।। औ. वि. च. २३

[33] राजेन्द्र. ५७

[34] उचितस्थानविन्यस्तैर्निपातैर्थसङ्गतिः ।
उपादेयैर्भवत्येव सचिवैरिव निश्चला ।। औ. वि. च. २५

[35] राजेन्द्र. ७१

[36] अकदर्थनया सूक्तमभिप्रायसमर्थकम् ।
चित्तमावर्जयत्येव सतां स्वस्थमिवार्जवम् ।। औ. वि. च. ३२

[37] राजेन्द्र. २०